वायु पुराण में वैदिक शिवतत्त्व का उपबृंहण

-डॉ० कपिल देव पाण्डेय

वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित शिवतत्त्व के विवेचन तथा वायुपुराण में उसके उपबृंहण की चर्चा करने से पहले वायुपुराण के स्वरूप, अष्टादश महापुराणों में उसके स्थान तथा शैवपुराण अथवा शिवपुराण से उत्पन्न भ्रान्ति पर कुछ विचार कर लेना संगतिप्राप्त है। अधिकांश पुराण अष्टादश महापुराणों का परिचय देने के प्रसंग में शिवपुराण को चतुर्थ महापुराण के स्थान पर रखने के पक्ष में हैं। केवल देवीभागवत, नारद तथा मत्स्यपुराण वायुपुराण को चतुर्थ महापुराण मानते हैं। आजकल दोनों पुराण प्राप्त हैं, पर दोनों के आकार और वर्ण्य विषय में अत्यन्त भिन्नता है। प्रायः सभी विद्वान्[1] अन्तः परीक्षण से, पुराणीय पञ्चलक्षण विद्यमान होने से, रचना की प्राचीनता से तथा शैली की विशुद्धता के कारण इस बात पर सहमत हैं कि वायुपुराण ही चतुर्थ महापुराण माना जाना चाहिये, शिवपुराण नहीं माना जा सकता। यद्यपि भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड शिवतत्त्व-प्रतिपादक हैं और शिवपुराण तो शिव नाम से ही जुड़ा है, लेकिन वायुपुराण का स्वरूप शिवमाहात्म्यपरक है और यही कारण है कि वह स्कन्दपुराण में शैव से भी अभिहित किया गया है। इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित वायुपुराण की प्रति के अध्यायान्त में 'वायुपुराण' शब्द तो प्रयुक्त है ही, शिवापराह्य' नामान्तर भी उल्लिखित है। इसके प्रवक्ता वायु के नाम से जुड़े होने के कारण इसका नाम वायुपुराण ही विशेष प्रचलन को प्राप्त हुआ, शिवपुराण का भी वायुप्रोक्त होना तथा शिवपुराण में एक वायवीय संहिता का होना भी है। प्रस्तुत सन्दर्भ में वैदिक शिवतत्त्व का उपबृंहण वायुपुराण में ही विवेचनीय है।

वायुपुराण में कुल ११२ अध्याय हैं, जिनमें नौ अध्याय (१०४-११२) किसी परवर्ती वैष्णवमतानुयायी के द्वारा प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। १०३ वाँ अध्याय ही इस पुराण का अन्तिम अध्याय लगता है, क्योंकि इसी के अन्त में फलश्रुति तथा महेश्वर की स्तुति है, जो इसके शैवतत्त्वविषयक पुराण होने का पुष्ट संकेत है। शिव के चरित्र का इसमें विस्तृत वर्णन होना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। पशुपति की पूजा से सम्बद्ध 'पाशुपतयोग' का निरूपण इसके पाँच अध्यायों[2](११-१५)में किया गया है जिसका वर्णन अन्य किसी पुराण में नहीं मिलता। यहां इसकी पूरी प्रक्रिया विस्तारपूर्वक वर्णित है। चौबीसवें अध्याय में शार्वस्तव तथा ३० वें अध्याय में दक्षके द्वारा की गई शिवस्तुति अतीव सुन्दर, साहित्यक तथा महत्त्वपूर्ण है। ये स्तुतियां वैदिक रुद्राध्याय के पौराणिक[3] उपबृंहण हैं।

ऋग्वैदिक देवता 'रुद्र' का 'शिव' के रूप में वर्णन यद्यपि यजुर्वेद में प्राप्त होता है, तथापि यह कथन असंगत नहीं होगा कि वैदिक 'रुद्र' का 'शिव' रूप में पूर्ण विकास पुराण-साहित्य में ही हुआ, उसमें भी विशेषतः 'वायुपुराण' में। Hopkin[4] के अनुसार ''ऋग्वेद के एक प्राचीन देवता का 'शिव' इस नये नाम से प्रकट होना यजुर्वेद की प्रमुख विशेषताओं में एक है। ऋग्वेद में 'रुद्र' का स्थान अन्य इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओं की अपेक्षा गौण और अप्रसिद्ध है। केवल तीन सम्पूर्ण[5] सूक्तों में एक में अंशतः, तथा एक में सोम के साथ सम्मिलित रूप से इनका प्रख्यापन है। पूरे ऋग्वेद में रुद्र शब्द केवल ७५ बार

आया है। यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय[६] रुद्र की स्तुति में प्रयुक्त है, जो रुद्राध्याय के नाम से प्रख्यात है। अथर्ववेद के एकादश काण्ड के द्वितीय सूक्त में रुद्र की स्तुति की गई है।

ऋग्वेद के अनुसार रुद्र वज्रबाहु, वज्रहस्त, स्विषु एवं सुधन्वा है इनका रूप भीम एवं उग्र है। ये उपहत्नु हैं। स्तोता भयाशंकित होकर प्रार्थना करता है-

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्
या नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।
मा नस्तोके नो अश्वेषु रीरिषः।।[७]

वह प्रार्थना करता है कि वे (रुद्र) क्रोध न करें, अपने आयुध और क्रोधात्मिका दुर्गति को रोकें।[८] यजुर्वेद के रुद्राध्याय में तथा अथर्ववेद के रुद्रसूक्त में रुद्र के मुख, चक्षु, त्वच्, उदर, जिह्व तथा दाँतो का वर्णन किया गया है। वे सहस्राक्ष हैं, वे नीलग्रीव हैं, वे शितिकण्ठ है -

नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।[९]

वे कहीं जटाधारी, कहीं व्युप्तकेश और कहीं हरिकेश रूप में वर्णित हैं। वे अवततधन्वा हैं, उनके धनुष का नाम पिनाक है। वायुपुराण में ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न रुद्र को शूलहस्त कहा गया है।[१०] यहाँ ऋग्वैदिक नाम वज्रबाहु से तुलना की जा सकती है। शार्वस्तव में रुद्र के एक नाम 'पिनाकी' का उल्लेख है। ऋग्वेद में धन्वन् तथा सायक धारण करने का उल्लेख है और शतपथब्राह्मण में 'शतेषुधि' तथा अधिज्यधन्वा का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद में रुद्र को 'शुचि'[११] कहा गया है और अथर्ववेद में रुद्र के उदर को नीला तथा पीठ को लोहित बताया गया है।[१२] वाजसनेयिसंहिता में रुद्र के लिये 'नीलग्रीव' तथा 'शितिकण्ठ' शब्द प्रयुक्त है।[१३] वायुपुराण[१४] में नीललोहित की चर्चा है। एक अन्य सन्दर्भ में रुद्र को नीलग्रीव तथा शितिकण्ठ भी कहा गया है। नीलकण्ठ होने का कारण वायुपुराण में उन्होनें स्वयं बताया है-

धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकंठस्ततो ह्यहम्।[१५]

शुक्लयजुर्वेद के अनुसार इनके अस्त्रशस्त्र इतने भयानक हैं, कि ऋषि उनसे बचने की प्रार्थना करते हैं-

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो वाणवानुत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः।।[१६]

रुद्र का शरीर बलशाली है। वे ऋग्वेद में क्रूर बतलाये गये हैं । वे इन्हें न मानने वाले मनुष्यों को अपने वाणों से छिन्न-भिन्न कर देते हैं, परन्तु अपने उपासकों के लिये कल्याणकारी हैं। इस गुण के कारण वे 'शिव' नाम से अभिहित हुये। वे चर्माम्बर धारण करते हैं। (*कृतिं वसानः* शु० य० १६.५१) ऋग्वेद में यदि रुद्र को वृषभ[१७] कहा गया है, तो वायुपुराण में वे वृषभध्वज[१८] शब्द से प्रख्यापित है। ऋग्वेद में रुद्र को पुरुरूप कहा गया है- *स्थिरेभिङ्गैः पुरुरूप ईयसे.....*[१९], तो वायु पुराण में उन्हें 'बहुरूप' कहा गया है- बहुरूपान् विरूपांश्च.....[२०] शुक्ल यजुर्वेद के समान वायुपुराण में भी सहस्र रुद्रों को कृत्तिवासस् कहा गया है।

वेदों में रुद्र का एक दूसरा स्वरूप भी वर्णित प्राप्त होता है। वे अत्यन्त सुखयिता, दयालु, कल्याणकारक तथा वैद्यों में श्रेष्ठ वैद्य के रूप में वर्णित हैं - *भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि।* संसार की दोनों प्रकार की औषधियों - शंच योश्च (शामक एवं पृथक्कारक) के स्वामी हैं। उनके हाथ को 'मृडयाकुः' तथा 'जलाषः' (सुख देने वाला तथा शीतलता प्रदान करने वाला) बताया गया है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण रुद्र के लिये प्रयुक्त 'शिव' विशेषण पुराणों में उनकी संज्ञा और स्वरूप के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। सूत्ररूप में कहा जाय तो वैदिक रुद्र ही पौराणिक शिव हो गये।

अथर्ववेद[२१] में रुद्र के नामों में भव, शर्व और पशुपति का उल्लेख है । वायुपुराण में रुद्र एवं शर्व में तादाम्य माना गया है- *रुद्रत्वं चैव शर्वस्य.....।*[२२] वाजसनेयि संहिता में रुद्र के लिये गिनाये गये नामों में एक शर्व है-

नमः शर्वाय च पशुपतये च नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय चेति।[२३]

'पशुपति' के पशु शब्द के अन्तर्गत केवल गाय, घोड़े इत्यादि जानवर ही नहीं मनुष्य भी अभिमत है। 'पशु' के तन्त्राभिमत अर्थ का संकेत अथर्ववेद के इस मन्त्र में प्राप्त होता है -

तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावोऽश्वाः पुरुषा अजावयः।[२४]

रुद्र का निवास अग्नि, जल, औषधियों, लताओं सबमें है। यह समस्त भुवनों में व्याप्त है *"तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये"* - इस आथर्वण प्रमाण के आधार पर रुद्र को अग्नि तत्त्व का प्रतीक माना जाता है। ऋग्वेद में भी 'त्वमग्ने रुद्रो'[२५] के द्वारा इसका संकेत किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में अत्यन्त स्पष्ट है- 'अग्निर्वै रुद्रः।' वायु पुराण में शिव की स्तुति करते समय उन्हें अग्नि कहकर सम्बोधित किया गया है-

अग्निस्त्वं चार्णवान् सर्वान् पिबन्नैव न तृप्यसे।
क्रोधागारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः।।[२६]

यहां शिव के विपरीत गुणों का उल्लेख दर्शनीय है। वे क्रोधागार होते हुए भी प्रसन्नात्मा हैं और 'कामहा' होते हुए भी 'कामद' हैं। इससे रुद्र के उग्र रूप के साथ-साथ रुद्र का शिवत्व भी स्पष्ट है। वे भयानक पशु की भांति उग्र तथा भयकारक होने के साथ मंगलकारक भी है। उनके रोगनिवारण की शक्ति तथा भिषक्तम होना इस तथ्य का समर्थक है। जैसा कि अभी चर्चा की गई रुद्र अग्नि के प्रतीक हैं, रुद्र के दोनों विपरीत स्वरुप अग्नि के दोनों विपरीत स्वरुपों के सदृश तथा अनुरूप हैं। अग्नि के दो रूप हैं- घोरातनु तथा अघोरातनु। ये दोनों रूप क्रमशः अग्नि के विनाशक तथा जीवनीशक्ति के प्रतीक हैं। वैसे ही रुद्र या शिव के दो रूप हैं - संहारक एवं कल्याणकारक।

उपनिषदों में ही रुद्र का शिव के मगंलकारी रूप में परिणमन का सूत्रपात दृष्टिगत होता है, जो पुराणों में पूर्ण विकास को प्राप्त हुआ। श्वेताश्वतरोपनिषद् में *'किं कारणं ब्रह्म'*[२७] प्रश्न करके *'एको हि रुद्रः'*[२८] स शिवः'[२९] के द्वारा रुद्र और शिव की एकात्मता तथा उसकी ब्रह्मरूपता बताई गई है। शिव को ही जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण बताया है-

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः।। [३०]

वे सर्वव्यापी हैं, सर्वगत हैं, तथा मंगलकारी हैं-'सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः। [३१]

इस प्रकार रुद्र और शिव ब्रह्मस्वरूप होने के कारण एक ही है। वैदिक ग्रन्थों में 'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति 'रुद्' अश्रुविमोचने धातु से बताई गई है। शतपथ ब्राह्मण में [३२] दिये गये आख्यान के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति के द्वारा उत्पादित कुमार नामकरण के लिये रोने लगा, इसलिये उसका नाम रुद्र रखा गया- *(यदरोदीत् तस्माद्रुद्रः)* अथर्वशिरस् उपनिषद् के अनुसार- *'अथ कस्मादुच्यते रुद्रः, यस्माद् ऋषिभिर्मान्यैः भक्तैः द्रुतमस्यरूपमुपलभ्यते।'* एक व्युत्पत्ति के अनुसार- *रुत्-दुखम् द्रावयति-नाशयति इति रुद्रः।* 'रुद्र' शब्द की अन्य व्युत्पत्तियों के लिये ऋङ् मन्त्र १.११४.१ का सायण भाष्य द्रष्टव्य है, जिनका उल्लेख यहां अप्रासंगिक है। एकादश रुद्रों की उत्पत्ति के प्रसंग में वायुपुराण में भी 'रुद्र' और 'द्रु' धातुओं से रुद्रशब्द निष्पन्न बताया गया है-

एवमुक्तास्तु रुरुदुः दुद्रुवुश्च समन्ततः।
रोदनाद् द्रावणाच्चैव रुद्रा नाम्नेति विश्रुताः।। [३३]

वायुपुराण में रुद्र को महादेव नाम से अभिहित किया गया है- *'देवेषु महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः।*[३४] महादेव उनके विभिन्न नामों में आठवां है। समस्त जगत् शिव का रूप है-

स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत्।। [३५]

शंकर में नित्य विद्यमान रहने वाले दश गुण बताये गये हैं। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मसंबोध तथा अधिष्ठातृत्व। वे अपने तेज तथा प्रताप से सभी देवों, असुरों तथा ऋषियों को अतिक्रान्त करते हैं, अतः वे महादेव हैं। वायुपुराण के अनुसार ब्रह्मा कृतयुग में पूजित है, त्रेता में यज्ञ का महत्त्व रहता है और द्वापर में विष्णु की पूजा होती है, किन्तु शिव चारों युगों में पूजे जाते है-

ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
द्वापरे पूज्यते विष्णुः अहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि।।[३६]

पुराणों में जहां कहीं शिव का भंयकर रूप वर्णित मिलता है, उसका आधार वैदिक वर्णनों का प्रभाव है। शिव की स्तुति करते हुए विष्णु उन्हें उग्ररूपधर, भीमकर्मा और क्रोधागार कहते हैं। शुक्राचार्य प्रार्थना करते हुए उन्हें क्रूर एवं बीभत्स बताते हैं-

क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च।[३७]

वायुपुराण में शिव के आठ नाम जो बताये गये हैं - रुद्र, भव, शिव, पशुपति, ईश, भीम, उग्र, महादेव, वे सभी शिवतत्त्व के चारित्र्यवैशिष्ट्य के पृथक्-पृथक् प्रतीक हैं[३८]। पशुपति शिव न केवल पशु अर्थात् प्राणिमात्र के स्वामी हैं, उनके हन्ता भी हैं। शुक्र उनकी स्तुति करते समय उन्हें 'पशुधन' कहकर सम्बोधित करते हैं। यहां भी ऋग्वैदिक प्रयोग का प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसमें रुद्र के शस्त्रों को

'गोहन' एवं 'पुरुषघ्न' कहा गया है- *आरे ते गोहनमुत पुरूषघ्नम्* [३९]। ऋग्वेद के प्रसिद्ध मन्त्र *त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्*।[४०] में रुद्र का एक नाम त्र्यम्बक दिया गया है, जिसके अर्थ के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भाष्यकारों ने इसका अर्थ त्रिनयन (तीन आंखों वाला) किया है। पाश्चात्य विद्वान् 'अम्बक' शब्द को जननीवाचक मानते है, लेकिन रुद्र की तीन मातायें कौन हैं, यह स्पष्ट नहीं है। वायुपुराण में एक स्थल पर नैर्ऋत नामक राक्षसों के स्वामी शंकर के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है-

तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यम्बकानुचरेण ह ।
उत्पादितः प्रजासर्गो गणेश्वरचरेण तु।।
विक्रान्ताः शौर्यसम्पन्ना नैर्ऋता देवराक्षसाः।
प्रायेणानुचरन्त्येते शंकरं जगतः प्रभुम्।। [४१]

एक अन्य प्रसंग में त्रिपुर का विनाश करने वाले शिव को त्र्यम्बक कहा गया है[४२] । एक अन्य प्रसंग में त्रिपुरा के कारण रुद्र की एक संज्ञा 'गिरिश' है, जिसका उल्लेख यजुर्वेद[४३] तथा वायुपुराण[४४] में प्राप्त होता है रुद्र के लिये सहस्राक्ष शब्द का प्रयोग अथर्ववेद[४५] तथा शतपथ ब्राह्मण[४६] में प्राप्त होता है। *(रुद्रः सहस्राक्षः)*। वायुपुराण में भी शिव की स्तुति के प्रसंग में उन्हें सहस्राक्ष कहा गया है।

वायु पुराण में रुद्र के रौद्र रुप तथा शिव के सौम्य रूप का समन्वय अनेक सन्दर्भो में मिलता है। जैसे-

क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च। [४७]
सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय शुभाय च। [४८]

इसके अतिरिक्त वायुपुराण में शिव, शम्भु, शंकर इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो उनके सौम्य रूप के परिचायक हैं। उनहत्तरवें अध्याय के अनुसार भूतों को भूति से उत्पन्न बताया गया है- *भूतिर्विजज्ञे भूतांश्च रुद्रस्यानुचरान् प्रभोः।*[४९] एक अन्य सन्दर्भ में शिव को भूतों का प्रभु - स्वामी कहा गया है-

'भूतानां प्रभुरीश्वरः, 'शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छदः' [५०]

यद्यपि अथर्ववेद में रुद्र को भूतनाथ कहा गया है, तथापि ए० बी० कीथ के अनुसार भूत का अर्थ यहां सामान्य जन है। ऋग्वेद के मरुद्गणों की समता वायुपुराण के रुद्रगणों से की गई है। उन्हें रुद्र की सन्तान कहा गया है- *(मरुतां पितः)*। इसी वैदिक तथ्य का उपबृंहण वायुपुराण के रुद्रगणों के माध्यम से किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है,कि वैदिक साहित्य में रुद्र का अपेक्षाकृत कम महत्त्व होने पर भी पौराणिक देवों के बीच शिव का अत्यधिक विशिष्ट महत्त्व है। रुद्र या शिव की वैदिक अवधारणा में पुराणस्तर पर महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गया, किन्तु शिव के पौराणिक नामों तथा उनके स्वरूप पर पड़े वैदिक प्रभाव का अपलाप नहीं किया जा सकता। वैदिक रुद्र के पौराणिक शिवतत्त्व के रूप में परिवर्तन को सही अर्थो में क्रमिक विकास या उपबृंहण कहा जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, हाजरा, पुसाल्कर इत्यादि
2. वायु पुराण 11-15
3. 24, 90-164
4. Religions of India, p.p. 153
5. I. 114, II. 33, VII-46
6. तै० सं० अध्याय 16 वाँ
7. ऋग्वेद I. 114, 7-8
8. वही II. 33,14
9. शुक्ल य० वे० 16.28
10. वा० पु० 25.16
11. ऋग्वेद VIII. 29.5
12. नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्..... अथर्व वे० 15-17
13. वा० सं० 17.2
14. वा० पु० 31-32
15. वा० पु० 54/94
16. शु० य० 16.10
17. ऋग्वेद II. 33.7
18. वा० पु० 70.6
19. ऋग्वेद II. 33.9
20. वा० पु० 10.45
21. अथर्ववेद 11.2.1
22. वा० पु० 21. 5
23. वा० सं० (शु० य०) 17.1
24. अथर्ववेद 11.2-9
25. ऋग्वेद II. 1-6
26. वा० पु० 24.159
27. श्वेताश्व 24.159
28. वही 3.2
29. वही 3-11
30. वही 3.2
31. वही 3-11
32. वा० पु० 9.73
34. वा० पु० 5.38
35. वही 7.72
36. वही 32.21
37. वही 97.178
38. वही 27/11
39. ऋग्वेद I.114.10
40. VII. 53.14
41. वा० पु० 69.167.169
42. वही 97. 82
43. वा० सं० 16.1
44. वा० सं० 69.283
45. अथर्ववेद 11.2.7
46. श० ब्रा० 9.1.1.6
47. वा० पु० 97.178
48. वही 97.179
49. वा० पु० 69.236
50. वही 24.35